"यन्त्र-मंत्र-तंत्र"

श्री गुरु नानक जी द्वारा निर्देशित इस मजमून में जो नाम से ही स्पष्ट तथा गुप्त भेदों की ओर इशारा करता है। स्पष्ट जान कर ही आत्मा इससे लाभान्वित हो सकती है। गुरु साहिब "मूल मन्त्र" को ही यन्त्र का दर्जा देते हैं। इसे कोई भी शुद्ध तथा पवित्र रह कर के तैयार कर सकता है। पवित्रता ही इस का "बल" है। तथा समस्त मण्डलों मे इस यन्त्र का पूर्ण प्रभाव है। सभी जूनें इसके आगे नतमस्तक हैं।

"मन्त्र" गुरु साहिब जी "नाउ" जो "सत" है उसे ही कहते हैं। इस एक "नाउ" के अलावा सभी पसारा केवल झूठ (कूड़) में ही गिना जाता है। कारण सभी कुछ प्रति-क्षण बदल रहा है ! फिर भी कोई ऐसा कण नहीं जो "नाउ" से रहित है। अर्थात सभी कुछ केवल "नाउ" ही है। तथा "नाउ" ही "परमात्मा" अर्थात एक आवाज (शब्द) है और यह शब्द "प्रकाशित" है कुछ आलम का बस केवल यही इतना सा ही "भेद" मात्र है। लेकिन "माया" द्वारा भ्रमित जीव सभी को अलग-2 भिन्न-भिन्न रूपों में ही देखना तथा विश्वास करना पसंद करता है। इसी में केवल भ्रमित जीव दुख को प्राप्त होता है (सुपने की तरह) जागने पर अपने घर लौट जाता है अर्थात सुख को प्राप्त होता है। सुख इसे बाहर से कहीं कुछ भी प्राप्त नहीं होता यह स्वयं ही केवल सुख (आनन्द) का ही रूप मात्र है। यही इस खेल में अचरज (विसमाद) है। जड़ से चेतन अलग कर देने पर जड़ किसी भी स्वाद अथवा सुख को महसूस करने तथा बताने मात्र में भी सक्षम नहीं है। इसी से सिद्ध होता है कि जो कुछ भी है केवल यह स्वयं अर्थात (आत्मा) ही है (अहम ब्राह्मस्मि) जब यह स्वयं को जान लेती है तो सब टंटा-झगड़ा समाप्त हो जाता है। वर्ना नाचना-कूदना, रोना-पीटना इसका इसी तरह से चलता रहता है अर्थात बना ही रहता है। और यह अनन्त काल से चला आ रहा है और

आगे भी ऐसे ही चलता रहेगा । अतः जागने का साधन केवल उसे ही पुकारना मात्र हो सकता है जो इस खेल को रचा रहा है और सभी को पुतले की तरह नचा अर्थात सुला रहा है और स्वंय सदा जागा हुआ ही है । उसी को सच-नाउ अर्थात परमात्मा कहा गया है । अतः गुरु साहिब जी का "मन्त्र" सभी मन्त्रों का गुरु, जड़-चेतन का आधार केवल एक "सतनाम" ही है । कारण केवल वही पूर्ण स्थिर तथा सदा एक रस है । शेष सभी उसी पर आधारित केवल "अपूर्ण" मात्र ही हैं । इसीलिये इस जागे हुऐ को पुकारना ही आत्मा के लिये केवल कल्याणकारी साबित हो सकता है ।

"तन्त्र" गुरु साहिब जी "मर्यादा तथा रहतनामा" (सिखी) दा को ही निर्देशित करते हैं । "मर्यादित जीव" ही केवल स्वंय को मानव होने का "अनुभव" कर सकता है शेष सभी तो मनुष्य जून नाम की ही है । है पूर्ण "पशु" वृति पर ही आधारित केवल ! "यन्त्र" और "मन्त्र" केवल और केवल सिर्फ तन्त्र पर ही आधारित हैं । तन्त्र नींव है यन्त्र और मन्त्र की । जैसे नींव के बिना महल क्या दीवार भी खड़ी नहीं रह पाती । उसी तरह से तन्त्र रहित जीव यन्त्र और मन्त्र से कभी भी "पूर्ण सुरक्षित" होने की कल्पना को साकार कर ही न पायेगा, युग बेशक अनन्त निकलते रहेगें पर रहेगा वो जीव केवल इसी चउरासीह के चक्र में ही । जिस तरह सिद्धों ने इस विशेष यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र से अनेक

सुखों समृद्धियों को प्रकट किया तथा "भ्रमित सुख" को प्राप्त हुऐ । इसी तरह से गुरु साहिब जी स्पष्ट करते हैं कि "सच्चे परमार्थी" के लिये यही यन्त्र-मन्त्र तथा तन्त्र ही अखुट सुखों का ही "केवल" भण्डार मात्र हैं । केवल परिभाषा में ही अर्थात "ज्ञान" में फर्क है । वो भी केवल "सच्चे जिज्ञासु" के लिये । "मनमुख दुख का खेत है - दुख बीजे दुख खाई । दुख विच जमै-दुख मरै - हउमै करत विहाई । आवण जाण न सुझई - अंधा अंध कमाई । जो देवै तिसै न जाणई - दिते को लपटाई ।" इसलिये "सच्चे खोजी" को इसी यन्त्र-मन्त्र तथा तन्त्र में ही सुख की (आत्मिक कल्याण) तलाश करनी वांच्छनीय है । यन्त्र-मन्त्र केवल तन्त्र का ही अंश मात्र हैं । तन्त्र की अनुपस्थिति में तो इन की कल्पना भी संभव नहीं है । तन्त्र की उपस्थिति में भी "सच्चे परमार्थी" के लिये विघ्न (दैवी ताकतों के-कर्म पर आधारित अथवा महंतो (दलालों)-सिद्धों के ईर्ष्या तथा सम्मान पर आधारित अनेक प्रकार के विघ्न ("वार (हमले) ") उपस्थित होने की स्थिति लगभग कई प्रकार से बनी ही रहती है तथा इस "विशेष स्थिति" का पारण केवल "विशेष मर्यादा" द्वारा ही किया जा सकता है । जो "शस्त्र धारण" पर ही आधारित है । यह शस्त्र मर्यादा किसी भी "मत विशेष" से कोई विशेष समबन्ध नहीं रखती । बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज के लिये "असुर वृति" (जो शब्द के ही विकृत स्वरुप पर

ही आधारित है।) जो निराकरण के लिये आवश्यक आधार है । देवी ताकतें जो स्वंय "सच्चे परमार्थी" के "प्राण" में घौर विघ्न के रूप हैं इस विकृत स्वरुप के निवारण के लिये भी खुद इसी "शस्त्र" को ही माध्यम बनाती हैं । अथवा धारण करती हैं । सभी दैवी ताकतों के हाथों में भी आपको "हथियार" ही दृष्टिगोचर होंगे । और इन "स्वंय" का भी "इलाज" केवल शस्त्र ही है । इस से कम में इन "हंकारी" दैवी ताकतों तथा प्राप्त सिद्धों (महंतो) से किसी भी सूरत में "सौदा" पटता ही नहीं है । अर्थात जीव पूर्ण सुरक्षित नहीं होता । जब तक जीव "तन्त्र" धारण में ढील करता है अर्थात पूर्ण तौर पर लगभग सक्षम नही होता तभी तक यन्त्र और मन्त्र भी सिद्ध नहीं होते तथा जीव अरक्षित अनुभव करता ही रहता है अर्थात उसे "वार" सहने पड़ते हैं यानी दुख भोगना ही पड़ता है । एक बार तन्त्र के सिद्ध होने पर फिर उस की स्थिति उसी में बनी रहती है "जब तक" यन्त्र-मन्त्र भी भरपूर कार्य करते हैं तथा सभी दैवी ताकतों (सिद्ध-गद्दीधारी महंतो) को केवल निराश ही होना पड़ता है । फिर ये कुछ जोर चलता न देख कर "बावले" हो जाते हैं तथा इनमें उद्वेग (क्रोध) रूपी शिशु जन्म लेता है । जो इन से उन्हीं के पतन के लिये ऐसे-2 कार्य भी करवा लेता है जो मनुष्य जाति के नाम पर ही धब्बा बन जाते हैं केवल गुरु घर का इतिहास ही साक्षी के लिये काफी है । धीरमल दादा को कैद कराने के

लिये मुखबरी निरन्तर शाही दुश्मनों से गुप्त समझौता चाचा गुरु तेग बहादुर जी के खून का प्यासा भरे दरबार में गोली से वार इत्यादि रामराय, पृथ्वीचन्द, मीणा कहाँ तक लिखा जाये कलम में "शब्द की ताकत" भी जवाब दे देती है। सभी प्रकार के सच्चे जिज्ञासुओं को पूर्ण लाभान्वित होने के लिये अर्थात सभी प्रकार के दैवी तथा लौकिक विघ्नों के निवारण के लिये गुरु जी द्वारा निर्देशित यन्त्र-मन्त्र तथा तन्त्र को "निष्कपट तथा निस्वार्थ" भाव से ही केवल धारण करने में आत्मिक कल्याण का अनुभव किया जा सकता है।